|| श्रीहरि: ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 2: सांख्ययोग

3/6 (श्लोक 25-32), शनिवार, 25 नवंबर 2023

विवेचक: गीता विशारद डॉ. संजय जी मालपाणी

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/vOKxlNrdxrQ

आत्मा का वास्तविक स्वरूप

भक्त शिरोमणि हनुमान जी के गुणों एवं कार्यों की चालीस चौपाइयों में वर्णित काव्यात्मक स्तुति हनुमान चालीसा के पाठ के पश्चात मङ्गलाचरण, दीप प्रज्वलन, तत्पश्चात परम पूजनीय सद्गुरु स्वामी गोविन्द देव गिरि जी महाराज के श्री चरणों में वन्दन करते हुए आज का विवेचन सत्र आरम्भ हुआ।

इस अध्याय के आरम्भ में अर्जुन का विषाद एक बार फिर प्रकट हुआ और उन्होंने भगवान से प्रश्न किया कि मैं अपने पितामह और गुरु को कैसे मार दूँ? भगवान ने पहले अर्जुन को डाँटा, फिर उन्हें समझाने का प्रयत्न किया परन्तु वे नहीं समझे। अर्जुन ने कहा मैं नहीं समझ पा रहा हूँ। आप ही बताइए कि मेरे लिए श्रेयस्कर क्या रहेगा?

शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम।

अर्जुन ने अपने आप को प्रभु के चरणों में समर्पित कर दिया व पूर्ण शरणागति से प्रभु के सामने नतमस्तक हो गए। इस प्रकार अर्जुन के शरणागत होने पर ही भगवद्गीता का प्राकट्य हुआ। गीता के आरम्भ में ही भगवान ने अर्जुन के मोह को दूर करने का प्रयास किया। भगवान ने बड़े विस्तार के साथ समझाया कि किस प्रकार शरीर अनित्य है और आत्मा नित्य व सनातन है। भगवान ने चौबीसवें श्लोक में कहा था -

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयम्, अक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः(स्) सर्वगतः(स्) स्थाणुः(र्), अचलोऽयं(म्) सनातनः।।

2.25

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयम्, अविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं(वँ) विदित्वैनं(न्), नानुशोचितुमर्हसि॥2.25॥

यह देही प्रत्यक्ष नहीं दीखता, यह चिन्तन का विषय नहीं है (और) यह निर्विकार कहा जाता है। अतः इस देही को ऐसा जानकर शोक नहीं करना चाहिये।

विवेचन: यह बात भगवान ने पहले भी कही है। जब कोई ज्येष्ठ व श्रेष्ठ व्यक्ति किसी बात को दोबारा कहते हैं, तो वे उसे रेखांकित करते हैं। इसका अर्थ यह है कि वह अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं तथा हमें उसे समझने का प्रयास करना चाहिए। भगवान ने चौबीसवें श्लोक में आत्मा के लिए चार विशेषण बताए हैं-

आत्मा अछेद्य है, अर्थात् इसका छेदन नहीं किया जा सकता।
यह अदाह्य है, अर्थात इसका दहन नहीं किया जा सकता।
यह अक्लेद्य है, अर्थात इसे गीला नहीं किया जा सकता।
यह अशोष्य है, अर्थात इसे सुखाया नहीं जा सकता।

आगे भगवान ने कहा कि यह आत्मा प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं देती। यह निर्विकार कही जाती है क्योंकि इसका चिन्तन भी नहीं किया जा सकता। हमारे सारे शास्त्र वहाँ तक पहुँचने की विधा बताते हैं, परन्तु वे यह नहीं बताते कि वहाँ पहुँचने के बाद क्या है। इसका तो मात्र अनुभव ही किया जा सकता है, चिन्तन नहीं। इसलिए इस शरीर के मर जाने के पश्चात शोक नहीं करना चाहिए।

आत्मा अव्यक्त और परोक्ष है क्योंकि यह प्रकृति जन्य नहीं है। यह हमारे शरीर में परमात्मा के अंश के रूप में विद्यमान है। ये शरीर प्रकृति जन्य है। जहाँ प्रकृति, वहाँ विकृति। पञ्च महाभूतों से निर्मित यह शरीर, मन, बुद्धि तथा अहङ्कार हमें प्रकृति से प्राप्त होते हैं। प्रकृति त्रिगुणात्मक होती है। इसके सत्व, रज तथा तमोगुण को लेकर ही हम जन्म लेते हैं। जिस प्रकार माँ के कारण ही शरीर जन्म लेता है, उसी प्रकार प्रकृति के कारण ही सभी जीव जन्तु जन्म लेते हैं। प्रकृति जड़ है तथा आत्मा उसे चेतन बनाती है। जिस क्षण शरीर में से आत्मा चली जाती है, उसी क्षण यह शरीर फिर से जड़ व निरर्थक बन जाता है। कुछ समय में उसमें से दुर्गन्ध आने लगती है। अतः उसे जलाया जाता है या फिर दफनाया जाता है। उसे प्रकृति के अधीन कर दिया जाता है। इस प्रकार जो प्रकृति से आता है, वह पुनः उसी में विलीन हो जाता है।

दूसरे जन्म में पुनः प्रकृति के कारण वह जन्म लेता है। यदि यह मर भी जाए तो इसका शोक नहीं करना चाहिए। हमारे यहाँ तो ऐसी परम्परा भी है कि जब परिपक्व व्यक्ति की मृत्यु होती है तो वह पोते, पड़पोते तथा सारा संसार देखकर जाते हैं। उनकी सभी इच्छाएँ तृप्त हो जाती हैं। बुढ़ापा आने पर धीरे-धीरे सभी इच्छाएँ, धीरे-धीरे समाप्त हो जाती हैं। यहाँ तक कि जीवन जीने की इच्छा भी समाप्त हो जाती है। ऐसा घटने पर प्राण निकल जाते हैं तथा शरीर जड़ हो जाता है।

त्रिगुणात्मक प्रकृति के सभी गुण हमारे अन्दर विद्यमान हैं। जीवन के लिए सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण, तीनों का सन्तुलन होना आवश्यक है। जैसे तमोगुण के कारण हमें नींद आती है। इसके अभाव में व्यक्ति सो ही नहीं सकता। उदाहरण के लिए रात भर विमान में प्रवास के कारण, ना सोने पर अगला दिन खराब हो जाता है। इस पर भी कई प्रयोग किए गए हैं कि मनुष्य बिना नींद के कितने दिन तक जीवित रह सकता है। कुछ लोगों को पन्द्रह से सत्रह दिनों तक लगातार जगाया गया तो वे लोग पागल हो गए, बीमार होकर मर गए। अतः जीवन में तमोगुण की भी आवश्यकता है। सही मात्रा में तीनों का समन्वयन होना चाहिए, इसे ही भगवान ने योग कहा है।

समत्वं योग उच्यते।

दूसरे अध्याय में ही भगवान ने योग की यह व्याख्या की है।
भगवान कहते हैं कि यह **आत्मा अछेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य, अशोष्य, अचल, अव्यक्त, अचिन्त्य तथा अविकारी है**। आत्मा का वर्णन करना असम्भव है। उसे समझाने हेतु भगवान ने निषेध-युक्त शब्दों का प्रयोग किया। आत्मा के लिए कहे जाने वाले यह सारे विशेषण अ से ही आरम्भ होते हैं। '**अ**' का अर्थ '**नहीं**' होता है। जिन शब्दों के पहले 'अ' वर्ण जोड़ा जाता है उन्हें निषेध-युक्त शब्द कहते हैं। जिस प्रकार किसी बात को समझने हेतु कहा जाता है कि ऐसा नहीं है, वैसा नहीं है, तो उसे समझने के निकट जाया जा सकता है। जब कोई विषय अनुभव का होता है तो उसका शब्दों में वर्णन करना कठिन होता है तब इसी प्रकार से उसका वर्णन किया जाता है जिस प्रकार भगवान ने यहाँ आत्मा का वर्णन किया है। हमें समझने हेतु सरल बना दिया है।

चौबीसवें श्लोक में उन्होंने कहा कि **आत्मा सनातन, स्थानु, स्थिर स्वभाव वाली तथा परिपूर्ण है**। यह जैसा है, वैसा का वैसा बताना अत्यन्त कठिन है क्योंकि यह अनुभव का विषय है। इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। जैसे किसी व्यक्ति ने कभी मीठा नहीं खाया। मिठास कैसी होती है, यह उसे समझाया नहीं जा सकता क्योंकि यह अनुभव का विषय है। उसे शक्कर का स्वाद समझने हेतु एक चम्मच खाने को देना ही पड़ेगा। वह देखकर यह नहीं जान सकता कि शक्कर क्या है। वह शक्कर तथा नमक का भेद देखकर नहीं पहचान सकता। वह खाकर ही यह जान सकता है कि मीठा स्वाद कैसा होता है। ठीक इसी प्रकार आत्मा भी अनुभव का विषय है जिसके लिए भगवद्गीता में कई प्रकार की विधाएँ बताई गई हैं।

2.26

अथ चैनं(न्) नित्यजातं(न्), नित्यं(वँ) वा मन्यसे मृतम्।
तथापि त्वं(म्) महाबाहो, नैवं(म्) शोचितुमर्हसि॥2.26॥

हे महाबाहो ! अगर (तुम) इस देही को नित्य पैदा होनेवाला अथवा नित्य मरने वाला भी मानो, तो भी तुम्हें इस प्रकार शोक नहीं करना चाहिये।

विवेचन: यदि देही को नित्य पैदा होने वाला या मरने वाला भी मानो तो भी तुम्हे शोक नहीं करना चाहिए। जन्म और मरण के कारण देह भी अनित्य है तो इसका शोक क्या करना।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय

शरीर भी पुनः नए वस्त्र लेकर आएगा। फिर इसकी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। जैसे बीज कभी एक रूप में नहीं रहता। जब इसे धरती में बोया जाता है तो वह अपनी कठोरता को त्यागकर अङ्कुर के रूप में प्रस्फुटित होता है, ये अङ्कुर भी अपने आप को त्यागकर वृक्ष में परिवर्तित होता है। आयु समाप्त होने पर सूख जाता है। इसी प्रकार यह शरीर भी अनित्य है। यह भी प्रतिक्षण बदलता रहता है। हमारे अन्दर पुरानी कोशिकाएँ मर रही हैं और नयी कोशिकाएँ हर क्षण जन्म ले रही हैं। जन्म और मृत्यु अटल हैं अतः इनके लिए शोक नहीं करना चाहिए।

2.27

जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु:(र्), ध्रुवं(ञ्) जन्म मृतस्य च।तस्मादपरिहार्येऽर्थे, न त्वं(म्) शोचितुमर्हसि॥2.27॥

कारण कि पैदा हुए की जरूर मृत्यु होगी और मरे हुए का जरूर जन्म होगा। अतः (इस जन्म-मरण रूप परिवर्तन के प्रवाह का) निवारण नहीं हो सकता। (अतः) इस विषय में तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये।

विवेचनः जिसका जन्म हुआ है उसका मरना निश्चित है, और जो मर गया उसका पुनः जन्म होना भी निश्चित है। जिस प्रकार ध्रुव तारा अचल है उसी प्रकार जन्म-मृत्यु का ये प्रवाह निरन्तर चलने वाला है। इसे टाला नहीं जा सकता। मृत्यु पर विजय पाने का प्रयास अनेक ने किया परन्तु असफल रहे। जैसे हिरण्यकश्यपु ने मृत्यु पर विजय पाने के लिए कठिन तपस्या की। मृत्यु अटल है अतः ईश्वर ने उसे कोई और वरदान माँगने को कहा। उसने यह वरदान माँगा कि वह न किसी मनुष्य द्वारा मारा जा सके, न पशु, देव या दानव द्वारा, न दिन में मारा जा सके न रात में, न घर के अन्दर न बाहर, न किसी अस्त्र के प्रहार से और न किसी शस्त्र के प्रहार से उसके प्राण लिए जा सकें। जब भगवान का अवतरण हुआ तो वे खम्भे से नरसिंह के रूप में प्रकट हुए जो आधे मनुष्य, आधे पशु अर्थात् जो न नर थे न पशु। उन्होंने हिरण्यकश्यपु को महल के प्रवेशद्वार की चौखट पर, जो न घर के बाहर था न भीतर, गोधूलि बेला में, जब न दिन था न रात, ऐसे नरसिंह के रूप में अपने लम्बे तेज़ नाखूनों से, जो न अस्त्र थे न शस्त्र, उसका पेट चीर कर उसे मार डाला। अतः मृत्यु अटल है।

जीवन की ABCD में
B for birth है
D for death है

यह B और D बदले नहीं जा सकते क्योंकि यह हमारे हाथ में नहीं है। बीच में C है अर्थात् choice हमारी है, कि हम रोते-रोते जीवन जियें या हँसते-हँसते। यह शरीर हमें प्रकृति से प्राप्त है, अतः इसमें कुछ ना कुछ यातना अथवा पीड़ा सभी को होनी स्वाभाविक है। फिर आधे भरे प्याले को आधा खाली कहकर रोते रहना या आधे भरे प्याले को देखकर प्रसन्न होकर रहना सीखना यह हमारे हाथ में है। सकारात्मक दृष्टिकोण रखने पर जीवन के दुखों का स्वत: ही नाश होने लगता है। यह अध्याय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें आगे भगवान ने सभी दुखों से बाहर निकलने का मार्ग बताया है।

मृत्यु के नाम से मनुष्य डर जाता है। मेरे मित्र राजू की बुआ जी उसे बहुत छेड़ती थी, किसी के भी विवाह में वह घोड़ी के सामने आकर राजू से कहती कि अब अगला नम्बर तुम्हारा ही है। राजू को बहुत बुरा लगता पर वह कुछ कह नहीं पाता था। एक दिन उसके दादा जी की मृत्यु हो गई। बुआजी भी बहुत रो रही थी। राजू ने बुआजी से कहा कि बुआजी घर में अब आप सबसे बड़ी हैं, अगला नम्बर अब आप का ही है। बुआजी रोते-रोते रुक गई और बहुत क्रोधित हो गईं। मृत्यु की बातें मनुष्य को नहीं भाती। अतः भगवान ने कहा है-

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य, त्रायते महतो भयात्।

छोटा सा धर्म कार्य भी मनुष्य को मृत्यु के भय से बाहर निकालता है। अतः हमारे यहाँ यह परम्परा है कि हम मृत्यु से नहीं घबराते। जैसे छत्रपति शिवाजी महाराज सदैव ही मृत्यु के साथ खेलते रहे। उनके पुत्र सम्भाजी महाराज भी अत्यन्त पराक्रमी थे। उनका अन्तिम समय बहुत दर्दनाक था। आठ दिनों तक उनका एक-एक अङ्ग काटा गया। उनकी जिह्वा व कान काट दिए गए, आँखें नोच ली गईं, अँगुलियाँ एक-एक करके तोड़ दी गई, शरीर की खाल छीलकर, उस पर नमक का पानी मारा गया। उन्हें इतनी दर्दनाक मृत्यु दी गई। इतनी यातना सहने पर भी वह सिंह की भाँति डटे रहे तथा अन्तिम क्षण तक उन्होंने इस्लाम स्वीकार नहीं किया। यह देखकर मृत्यु को भी लज्जा आ गई। सम्भाजी महाराज के जीवन पर लिखा गया एक नाटक भी बहुत प्रसिद्ध है, **इथे ओशाळला मृत्यू।**

जिस प्रकार सूर्य उदय होता है तो अस्त भी होता है। वैसे वास्तव में सूर्य ना तो उदय होता है ना ही अस्त, यह एक भ्रम है। इस प्रकार जन्म तथा मृत्यु भी अटल है। यह माया है।

2.28

अव्यक्तादीनि भूतानि, व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव, तत्र का परिदेवना॥2.28॥

हे भारत ! सभी प्राणी जन्म से पहले अप्रकट थे (और) मरने के बाद अप्रकट हो जायँगे, केवल बीच में ही प्रकट दीखते हैं। (अतः) इसमें शोक करने की बात ही क्या है?

विवेचनः हे भारत, सभी प्राणी जन्म से पहले अप्रकट थे और मृत्यु के बाद भी अप्रकट हो जायेंगे। अर्थात् दो जन्मों के बीच के समय में मनुष्य अप्रकट है। वह अपने पूर्व जन्म के कर्मों के शुभ-अशुभ फल को भोगते हैं, उसके पश्चात फिर प्रकट हो जाते हैं। नए-नए आकार में वह प्रकट होता है तथा फिर बिखर जाता है यह क्रम इसी प्रकार चलता रहता है। आकाश में बादलों के आने-जाने से हम उन पर आसक्ति नहीं करते। जैसी संवेदना हमें बादलों के प्रति है वैसी ही संवेदना हमें शरीर के प्रति होनी चाहिए। महिलाएँ अपने पुराने आभूषण को सुनार के पास लेकर जाती हैं। सुनार उसे भट्टी में डालकर पिघलाता है पर वे दु:खी नही होतीं क्योंकि उन्हें पता है कि इससे नया आभूषण बनेगा। अतः वे प्रसन्न होती हैं। सोना तो उतना ही रहेगा बस उसका आकार तथा रूप बदल जायेगा। उसी प्रकार जब आत्मा वही रहने वाली है बस उसका शरीर बदलेगा तो इसमें दु:खी होने की कोई बात नहीं है।

2.29

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनम्,
आश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः(श्) शृणोति,
श्रुत्वाप्येनं(वँ) वेद न चैव कश्चित्॥2.29॥

कोई इस शरीरी को आश्चर्य की तरह देखता (अनुभव करता) है और वैसे ही दूसरा (कोई) (इसका) आश्चर्य की तरह वर्णन करता है तथा अन्य (कोई) इसको आश्चर्य की तरह सुनता है और इसको सुनकर भी कोई नहीं जानता।अर्थात यह दुर्विज्ञेय है।

विवेचनः कोई इस शरीर को आश्चर्य की तरह देखता है और आश्चर्यपूर्वक उसका वर्णन भी करता है। कोई यह वर्णन आश्चर्य की तरह सुनता भी है पर सुनकर भी कोई नहीं जानता। आत्मा का आना-जाना बहुत अद्भुत है। यह एक शरीर से आती है दूसरे शरीर में जाती है। अतः इसे दुर्विज्ञ कहा गया है। जैसे कोई अनुभव देखकर, सुनकर, स्पर्श से, गन्ध से, चख कर हो सकता है, परन्तु जो देखा न जा सके, सुना न जा सके, स्पर्श न किया जा सके, जिसकी न कोई गन्ध है, न ही रस, ऐसे विषय के बारे में कुछ कहना अपने आप में एक आश्चर्य है। केवल आश्चर्य प्रकट किया जा सकता है, आश्चर्य से उसका वर्णन किया जा सकता है, उस वर्णन को आश्चर्य से सुना जा सकता है पर समझा नहीं जा सकता। उसे माना जा सकता है परन्तु जानने हेतु अनुभव करना होगा क्योंकि यह अनुभव का विषय है। आत्मा को जानने हेतु साधना करनी होगी।

2.30

देही नित्यमवध्योऽयं(न्), देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि, न त्वं(म्) शोचितुमर्हसि॥2.30॥

हे भरतवंशोद्भव अर्जुन! सबके देह में यह देही नित्य ही अवध्य है। इसलिये सम्पूर्ण प्राणियों के लिये अर्थात् किसी भी प्राणी के लिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये।

विवेचनः भगवान ने कहा हे भरतवंशी अर्जुन, सबकी देह में यही देही है इसलिए तुम्हें किसी भी प्राणी के लिए शोक नहीं करना चाहिए। **देही नित्य है, सत्य है, अविनाशी है जबकि यह देह अनित्य, असत्य तथा विनाशी है**। ग्यारहवें श्लोक से लेकर तीसवें श्लोक तक, ये बीस श्लोक देह तथा देही के बीच की विभिन्नता को स्पष्ट करने वाले हैं। इसे अध्ययन द्वारा समझा जा सकता है परन्तु जानने हेतु साधना व ज्ञान आवश्यक हैं। इसे भक्ति द्वारा पहचाना जा सकता है तथा वैराग्य द्वारा पाया जा सकता है।

भगवद्गीता धर्म ग्रन्थ है। इसका वास्तविक अर्थ समझना आवश्यक है। धर्म ग्रन्थ मात्र सम्भाल कर रखने व पूजने के लिए नहीं होते हैं। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई ये सब धर्म नहीं हैं, ये रिलिजन हैं। वर्तमान में इज़राइल तथा हमास के बीच एक छोटे से स्थान जेरूसलम के लिए युद्ध चल रहा है। यह धर्म के लिए युद्ध है परन्तु धर्म युद्ध नहीं। भगवद्गीता में सनातन धर्म की अत्यन्त सुन्दर व्याख्या की गई है। इसका आरम्भ इस श्लोक से होता है-

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे, समवेता युयुत्सवः।
मामकाः(फ्) पाण्डवाश्चैव, किमकुर्वत सञ्जय॥

यहाँ प्रथम शब्द **धर्म** है जिसका प्रथम वर्ण 'ध' है। इसका अंतिम श्लोक है-

यत्र योगेश्वरः(ख्) कृष्णो, यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिः(र्), ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

यह 'म' वर्ण से अन्त होता है। **प्रथम वर्ण ध, अन्तिम म अर्थात् धर्म**। यहाँ धर्म की सटीक व्याख्या की गई है। धारण किया जाने वाला धर्म होता है।

धारयति इति धर्मः।

वस्तुत: धर्म शब्द का अर्थ केवल कर्त्तव्य के रूप में ही ग्रहण किया जाना चाहिए। कर्त्तव्य को धारण किया जाता है। एक स्त्री जब गृहिणी बनती है तो उसका गृहिणी धर्म होता है परिवार को सम्भालना। जब वह माता बनती है तो उसका मातृधर्म होता है बच्चों का लालन-पालन करना। इसी प्रकार पिता के कर्त्तव्य पितृ धर्म है, शिक्षक के कर्त्तव्य शिक्षक धर्म है, व्यापारी के कर्त्तव्य व्यापार धर्म है तथा सैनिक का कर्त्तव्य राष्ट्र धर्म है।

2.31

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य, न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्, क्षत्रियस्य न विद्यते॥2.31॥

और अपने क्षात्रधर्म को देखकर भी (तुम्हें) विकम्पित अर्थात् कर्तव्य-कर्म से विचलित नहीं होना चाहिये क्योंकि धर्ममय युद्ध से बढ़कर क्षत्रिय के लिये दूसरा कोई कल्याणकारक कर्म नहीं है।

विवेचनः अर्जुन का स्वधर्म क्षत्रिय धर्म है। धर्म से बढ़कर कल्याणकारी और कुछ नहीं होता। क्षत्रिय का जन्म ही युद्ध करने के लिए होता है। अतः क्षत्रिय का प्रथम धर्म है- युद्ध करना। विद्या बेची नहीं जा सकती इसीलिए भगवद्गीता सिखाने हेतु कोई फीस नहीं लगती। हमारे धर्म ग्रन्थों के अनुसार शिक्षा सभी को नि:शुल्क दी जानी चाहिए। गुरु दक्षिणा भी नहीं माँगनी चाहिए।

द्रोणाचार्य की कथा से सभी परिचित होंगे। उनके पास अपने पुत्र अश्वत्थामा को पिलाने हेतु दूध भी नहीं था। अतः भीष्म पितामह के पास जाकर उन्होंने शिक्षक बनने का अनुरोध किया। उन्हें मासिक वेतन मिलने लगा। वे गुरु से शिक्षक बन गए। यह उनकी पहली भूल थी। द्रोणाचार्य कौरवों तथा पाण्डवों को धनुर्विद्या सिखाते थे। उन्होंने गुरु दक्षिणा माँगी यह उनकी दूसरी भूल थी । किसी सुयोग्य व सुपात्र को विद्या देने से वञ्चित नहीं रखना चाहिए। ज्ञान से पवित्र कुछ नहीं।

न हि ज्ञानेन सदृशं(म्), पवित्रमिह विद्यते।

एकलव्य एक वनवासी था जो द्रोणाचार्य से धनुर्विद्या सीखने आया था। वस्तुतः उन्होंने एकलव्य से उसका अँगूठा नहीं माँगा था। उन्होंने यह गुरु दक्षिणा माँगी थी कि जब कौरव तथा पाँडव आपस में युद्ध करेंगे तो वह दोनों में से किसी के भी विरोध में युद्ध नहीं करेगा। एकलव्य के लिए तो यह अँगूठा काटने जैसी बात थी। हर क्षत्रिय अपने जीवन में सबसे बड़े धर्म युद्ध में लड़ने की आकांक्षा रखता है।

इसे इस उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है जैसे क्रिकेट के अच्छे खिलाड़ी को गली में खेलने दिया जाए परन्तु उसे वर्ल्ड कप अथवा ओलम्पिक में खेलने से रोक दिया जाए। उसकी दिन-रात की मेहनत तथा आहार विहार पर संयमन, वर्षों का प्रयास एक क्षण में समाप्त हो गया। इस प्रकार महाभारत के युद्ध के समय जीवित होते हुए भी एकलव्य युद्ध में सम्मिलित नहीं हुआ। ऐसा करके वह अपनी गुरु दक्षिणा दे रहा था।

द्रोणाचार्य ने कौरवों तथा पाँडवों से भी गुरु दक्षिणा में राजा द्रुपद को पड़कर लाने को कहा। द्रुपद, द्रोणाचार्य के बचपन के मित्र थे। उन्होंने द्रोणाचार्य को अपनी जान बचाने हेतु आधा राज्य देने का वचन दिया था, परन्तु जब द्रोणाचार्य उनसे एक गाय माँगने गए तब उन्होंने वह नहीं दी। इससे आहत होकर द्रोणाचार्य ने अपने शिष्यों को द्रुपद को पकड़कर लाने की आज्ञा दी। द्रुपद को बन्दी बनाकर लाया गया। तब द्रोणाचार्य ने अहङ्कार से भरकर कहा कि तुमने अपनी मित्रता नहीं निभाई परन्तु मैं अपनी मित्रता अवश्य निभाऊँगा। यह राज्य मैं तुम्हें दान के रूप में लौटाता हूँ। यह द्रोणाचार्य का अहङ्कार था। एकलव्य को युद्ध से वञ्चित कर उचित नहीं किया था।

दूसरे अध्याय के सातवें श्लोक में अर्जुन भगवान से पूछते हैं कि मेरे लिए श्रेयस्कर क्या है? इसका उत्तर भगवान यहाँ देना आरम्भ करते हैं। एक क्षत्रिय हेतु युद्ध से बढ़कर और कोई बात श्रेयस्कर नहीं होती। वह धर्म युद्ध होना चाहिए।

2.32

यदृच्छया चोपपन्नं(म्), स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः(फ्) पार्थ, लभन्ते युद्धमीदृशम्॥2.32॥

अपने-आप प्राप्त हुआ (युद्ध) खुला हुआ स्वर्ग का दरवाजा भी है। हे पृथानन्दन ! (वे) क्षत्रिय बड़े सुखी (भाग्यशाली) हैं (जिनको) ऐसा युद्ध प्राप्त होता है।

विवेचनः अपने आप प्राप्त हुआ युद्ध स्वर्ग के द्वार खोलने से कम नहीं। यदि तुम हारते हो तो भी तुम्हें स्वर्ग की प्राप्ति होगी यदि जीते तो इतिहास में तुम्हारी कीर्ति अमर हो जाएगी। अतः एक क्षत्रिय को युद्ध से पीछे नहीं हटना चाहिए। जिस क्षत्रिय को ऐसा धर्म युद्ध प्राप्त होता है वह सौभाग्यशाली है। महाभारत के युद्ध को धर्म युद्ध क्यों कहा जाता है? यह इसलिए क्योंकि पाण्डव अपने अधिकार के लिए युद्ध करते हैं। अनीति द्वारा पाण्डवों का राज्य छीना गया। शकुनि ने गलत पासे फेंक कर उन्हें फँसा कर बारह वर्ष का वनवास तथा एक वर्ष अज्ञातवास दिया। यदि पाण्डव अज्ञातवास में पकड़े जाते तो फिर से बारह वर्ष वनवास तथा एक वर्ष अज्ञातवास भोगना पड़ता। वे पकड़े नहीं गए। जब वे लौटे तो उन्हें अपमानित करके निकाल दिया गया। कई प्रकार के सन्धि प्रस्ताव भेजे गए। स्वयं भगवान श्रीकृष्ण प्रस्ताव लेकर गए। उन्होंने भी कहा-

दो न्याय अगर तो आधा दो,
पर, इसमें भी यदि बाधा हो,
तो दे दो केवल पाँच ग्राम,
रक्खो अपनी धरती तमाम।
हम वहीं खुशी से खायेंगे,
परिजन पर असि न उठायेंगे!

दुर्योधन का विवेक मर गया था जो उसने प्रस्ताव ठुकराया तथा श्रीकृष्ण को बन्दी बनाने का आदेश दे दिया। तब भगवान ने अपना विराट रूप धारण किया। दुर्योधन की मृत्यु वहीं निश्चित हो गई थी। जब किसी क्षत्रिय को इस प्रकार से प्रताड़ित तथा वञ्चित किया जाता है, उसके साथ धृष्टता व छल किया जाता है, उसके राज्य की किसी भी स्त्री का वस्त्रहरण करके अपमान किया जाता है, तो उस क्षत्रिय का कर्त्तव्य है कि वह अपराधी को देह-दण्ड की सजा दे। अतः भगवान कहते हैं कि यह धर्म युद्ध है जो तुम्हारे जीवन में स्वर्ग के द्वार खोलने आया है। इस युद्ध से तुम्हें डरना नहीं चाहिए। यदि तुम युद्ध नहीं करोगे तो भी तुम यहाँ से भाग नहीं सकोगे।

वैसे तो अर्जुन कई बार युद्ध जीत चुके थे। पाण्डव एक वर्ष के अज्ञात वास की अवधि, राजा विराट के यहाँ व्यतीत कर रहे थे। वहाँ द्रौपदी 'सैरन्ध्री' नामक एक दासी के रूप में राजा विराट की पत्नी की सेवा में कार्यरत थी। अर्जुन 'वृहन्नला' के रूप में राजकुमारी उत्तरा को सङ्गीत व नृत्य की शिक्षा दे रहे थे। उस समय कीचक सैरन्ध्री (द्रौपदी) पर मोहित हो गया। द्रौपदी पर आँख उठाने के परिणामस्वरूप बल्लव बने भीमसेन ने कीचक का वध कर दिया। उसे इतना मारा कि उसकी सारी हड्डियाँ टूट गई तथा वह माँस का गोला बन गया। कीचक बहुत बलवान था परन्तु वह आतङ्की था। उसके साथ अनुकीचकों की पूरी सेना थी। उन्होंने कीचक की इच्छा पूर्ण करने हेतु द्रौपदी को उसके साथ बाँधकर सती करने के लिए श्मशान में भस्म करने की ठानी। तब अकेले अर्जुन ने समस्त अनुकीचकों का वध किया। यह बात सम्पूर्ण भारतवर्ष में आग की भाँति फैल गई। तब दुर्योधन ने पहचान लिया कि ये भीम तथा अर्जुन के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकते। तब एक व्यूह रचना की गई जिसके अनुसार विराट नगरी के एक ओर पहले कौरव सेना आक्रमण करेगी तथा दूसरी ओर से कौरव। उस समय विराट नरेश अपनी पूरी सेना लेकर कौरव सेना से युद्ध करने गए। तभी दूसरी ओर से कौरवों ने आक्रमण कर दिया। महल में केवल राजकुमार उत्तर ही थे। युद्ध में जाने की बात सुनकर उत्तर घबराया और बोला कि मेरा सारथी महाराज लेकर चले गए हैं मैं युद्ध के लिए नहीं जा सकता। तब सैरन्ध्री ने कहा वृहन्नला बहुत निपुण सारथी है और वह कुन्तीपुत्र अर्जुन की सारथी रह चुकी है। तुम उसे अपना सारथी बना कर युद्ध के लिये जाओ। अन्ततः राजकुमार उत्तर वृहन्नला को सारथी बनाकर युद्ध के लिये निकला। आधे रास्ते पहुँचने पर उत्तर यह कहते हुए रथ से कूद गया कि मुझे युद्ध करना नहीं आता। तब वृहन्नला ने उसे पकड़ कर सारथी के स्थान पर बैठा कर बाँध दिया। उसे आश्वासन दिया कि यह युद्ध वही जीतेंगे। रथ को श्मशान की ओर ले जाकर शमी के वृक्ष से

समस्त अस्त्र-शस्त्र निकालकर, रथ में भरकर अर्जुन रणभूमि की ओर चल दिए। अर्जुन के मोहिनी अस्त्र द्वारा समस्त कौरव मूर्छित हो गए। तब अर्जुन ने उत्तर को राजकुमारी उत्तरा की गुड़िया के वस्त्रों के लिए सभी कौरवों के उत्तरीय उतार लाने का आदेश दिया। किसी का उत्तरीय उतारना सबसे बड़ा अपमान समझा जाता था। साथ ही अर्जुन ने उत्तर को यह निर्देश भी दिया कि जिनकी दाढ़ी सफेद है उन दो महानुभावों (भीष्म पितामह तथा द्रोणाचार्य) के उत्तरीय मत उतारना।

ऐसे वीर, महारथी अर्जुन आज काँप रहे हैं कि मैं अपनों को कैसे मारूँ। इस धर्म युद्ध में या तो जय होगी या पराजय। एक ओर जीवन दूसरी ओर मरण है। उन दोनों के बीच में अर्जुन खड़े हैं तथा श्रीभगवान उन्हें धर्म समझा रहे हैं।

इसके पश्चात प्रश्नोत्तर सत्र आरम्भ हुआ -

प्रश्नकर्ता : बीना नायर दीदी

प्रश्न : जीवन और मृत्यु का क्या मतलब है? हमें यह पता है कि जीवन देही और देह के जुड़ने से बनता है लेकिन इसका सही अर्थ क्या है और मरना क्या है, वह क्या है जो मरता है?

उत्तर : गर्भाधान के समय गर्भ में प्राण नहीं होता। गर्भधारणा केवल प्रकृति का काम है उसके बाद हम कहते हैं कि जन्म तो तब होता है जब वह शिशु माता की कोख से बाहर निकलता है, माँ से विलग होता है, जब उसकी नाल कटती है।

मृत्यु क्या है, पुरुष जब प्रकृति के बाहर निकले तब मृत्यु होती है इसीलिए हम देह का अन्त्येष्टि संस्कार करते हैं, आत्मा का नहीं। आत्मा तो अमर है। तो हम कह सकते हैं कि शरीर से आत्मा का निकलना मृत्यु है। लेकिन आत्मा का भी शरीर से जुड़ाव रहता है इसीलिए कहते हैं कि बारह दिन तक वह शरीर के आसपास रहती है। इसीलिए बारह दिन तक मृत्यु संस्कार किए जाते हैं जिनमे आत्मा को तिलाञ्जलि और जलाञ्जलि देकर उसे तृप्त करने का प्रयास किया जाता है।

प्रश्नकर्ता : सौमेंद्र भैय्या

प्रश्न : साङ्ख्य शब्द का मतलब क्या है और यह अध्याय जब इतना गहन है तो दूसरे अध्याय के रूप में क्यों है, इसे तो बाद में अर्थात अन्तिम अध्याय के रूप में आना चाहिए था।

उत्तर : दूसरा अध्याय साङ्ख्ययोग के नाम से जाना जाता है। इसे इस तरह समझा जा सकता है कि किसी को समझाते समय पहले सम्पूर्ण विषय के बारे में संक्षिप्त रूप से कहा जाता है, फिर उसे विस्तार से समझाया जाता है और अन्त में फिर मुख्य बिन्दुओं को रेखांकित किया जाता है अर्थात उसका सारांश बताया जाता है। इसी प्रकार दूसरा अध्याय मुख्य बिन्दुओं को रखता है फिर बीच के सारे अध्यायों में एक-एक बिन्दु का विस्तार किया गया है और अन्तिम अध्याय अर्थात अध्याय अट्ठारह में फिर इन सब का सारांश बताया गया है।

अब इसका नाम साङ्ख्ययोग क्यों है तो यह शब्द दर्शन में से एक अर्थात साङ्ख्य दर्शन पर आधारित है साङ्ख्य शब्द सङ्ख्या से आया है। जब हम सङ्ख्या को लेते हैं तो उसका पहला प्रतीक एक, यह सङ्ख्या है सब कुछ एक है एकात्मता को साधने वाला भक्ति जो विभक्ति नहीं होता इस प्रकार का वर्णन आने के कारण इसे साङ्ख्य योग कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : प्रबोध कुमार भैय्या

प्रश्न : अस्त्र और शस्त्र में क्या अन्तर है ?

उत्तर : शस्त्र वह होता है जो हाथ में पकड़ कर मारा जाए जैसे भाला, गदा आदि। अस्त्र वह होता है जो केवल फेंक कर ही मारा जाता है जैसे बाण।

प्रश्न : द्रोणाचार्य ने गुरु दक्षिणा के रूप में एकलव्य से उसका अङ्गूठा माँग लिया, तो क्या द्रोणाचार्य पहले से जानते थे कि महाभारत

का युद्ध होगा ??

उत्तर : नहीं, द्रोणाचार्य नहीं जानते थे कि महाभारत का युद्ध होगा, उन्होंने एकलव्य से अङ्गूठा माँगा था इसलिए कि जब भी उनका किसी अन्य से युद्ध होगा तो एकलव्य विरोधियों की तरफ से नहीं लड़ेगा, वह ना तो कौरवों पर और ना ही पाण्डवों पर आक्रमण करेगा। लेकिन दुर्योधन के स्वभाव को देखकर द्रोणाचार्य को अन्देशा था कि कौरव पाण्डवों के बीच युद्ध हो सकता है।

प्रश्नकर्ता : नानक चन्द भैय्या

प्रश्न : कृष्ण हमेशा कहते हैं कि कर्म कर फल की इच्छा ना कर फिर उन्होंने अर्जुन को युद्ध जीतने पर राज्य मिलेगा और हार भी गए तो स्वर्ग मिलेगा ऐसा क्यों कहा ??

उत्तर : कोई भी बात समझानी हो तो पिता अपने पुत्र को धीरे-धीरे एक-एक बात का स्पष्टीकरण करते हुए, उसे आसान बनाकर समझाते हैं, पुत्र की मनोदशा देखकर ही पिता बात को समझाते हैं, इसी प्रकार कृष्ण ने अर्जुन के साथ किया।

प्रश्न : क्या गीता में ऐसे विरोधाभास हैं ?

उत्तर : हाँ, हमें लगता है कि गीता में ऐसे विरोधाभास हैं, लेकिन जैसे-जैसे हम इसका गहरा अध्ययन करते हैं हमें पता चलता है कि वास्तव में ये विरोधाभास नहीं हैं, एक सैनिक को यदि गोली चलानी पड़ती है तो वह किसी से बैर के कारण नहीं परन्तु वह भावना कर्त्तव्य के कारण गोली चलाता है।

मेरे पास एक बालक आया, उसने कहा रविवार का दिन था दरवाजे की घण्टी बजने पर दूध वाला आया था, जाकर पिताजी को बताया तब पिताजी ने कहा कि कह दो मैं घर में नहीं हूँ वह बाद में आए। अब बच्चे का प्रश्न यह था कि उसे सिखाया गया था कि झूठ ना बोले लेकिन यदि वह सच बोलता है तो पिता की आज्ञा का पालन नहीं करता तो पितृ धर्म बड़ा हुआ कि सत्य धर्म ? ऐसे कई प्रसङ्ग आते हैं, **जब लड़ाई धर्म और अधर्म की होती है तब तो निर्णय लेना आसान होता है लेकिन जब वही लड़ाई धर्म और धर्म के बीच होती है तब निर्णय लेना कठिन होता है।** यहाँ पर मैंने उसे ऐसे समझाया कि सच बोलना तो धर्म है लेकिन अभी कुछ क्षण के लिए सच न बोलना भी मान्य है क्योंकि उसका प्रभाव क्षणिक मात्र हो सकता है, हो सकता है कि पिताजी कुछ परेशानी में हों, वे दूध वाले के पैसे तो देंगे लेकिन किसी कारणवश थोड़ा बाद में दे पाएँगे, लेकिन वे शर्म के कारण यह बात कुछ छिपाना चाहते हों और इसीलिए असत्य बोलने की बात कह रहें हों।

यही उदाहरण हमें महाभारत के युद्ध में दिखाई देता है। महाभारत का युद्ध तो धर्म युद्ध था, जब द्रोणाचार्य ने अश्वत्थामा के मरने की बात सुनी तो वे धर्मराज के पास गए और पूछा क्या सचमुच अश्वत्थामा मर गया है, तब श्रीकृष्ण के बताए अनुसार धर्मराज ने कहा- अश्वत्थामा मर गया है, साथ ही उन्होंने धीरे से यह भी कहा कि **नरो वा कुञ्जरो वा**, लेकिन इसी समय श्रीकृष्ण ने बहुत जोर से अपना शङ्ख बजाया, जिसके कारण धीरे से कही गई यह बात द्रोणाचार्य को सुनाई नहीं दी अर्थात कृष्ण ने व्यावहारिक सत्य बोलने की बात कही है।

प्रश्नकर्ता : वृन्दा दीदी

प्रश्न : जब हम कहते हैं की जन्म मृत्यु का फेरा इसका मतलब जन्म के बाद मृत्यु और मृत्यु के बाद जन्म यह तो होना ही है तो फिर ईश्वर प्राप्ति के लिए साधन क्यों और मोक्ष प्राप्ति का क्या अर्थ है ??

उत्तर : सरल बात को पहले समझाया जाता है 99.99% जन्म मृत्यु की बात होती है इसलिए भगवान पहले जन्म मृत्यु के फेर की बात करते हैं, बची हुई दशमलव एक प्रतिशत सम्भावना के बारे में आगे बात की गई है।

प्रश्नकर्ता : स्मिता दीदी

प्रश्न : भगवद्गीता में पुरुष और प्रकृति यह शब्द कई बार आते है इन दोनों का सही अर्थ क्या है?

उत्तर : पुरुष है परमात्मा अर्थात ना दिखने वाला अंश, प्रकृति स्वयं जड़ है। प्रकट रूप में जो दिखे वह प्रकृति है, वह पञ्चमहाभूतों के साथ सहयोग होने पर और प्रकृति के गुण सत्व, रज और तम, मन, बुद्धि और अहङ्कार से जुड़ते हैं। इस तरह प्रकृति का पुरुष के संयोग से प्रकटीकरण होता है अर्थात हम कह सकते हैं कि पुरुष और प्रकृति मिलकर चेतना का निर्माण करते हैं।

इसके साथ ही प्रश्नोत्तर सत्र और प्रार्थना के साथ विवेचन सत्र का समापन हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||